शोध मंथन Vol. XVII No.2 Apr.- June. 2026 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *https://anubooks.com/journal-volume/shodhmanthan-vol-xvii-june-2026-no2*

खेल के मैदानों से स्क्रीन तकः झारखंड के जनजातीय युवाओं में बदलते मनोरंजन के प्रतिरूप

प्राप्तिः 01.04.2026
स्वीकृतः 16.06.2026

35

डॉ अमित राहुल
विभागाध्यक्ष (वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर)
(समाजशास्त्र विभाग)
किशोरी सिन्हा महिला महाविद्यालय, औरंगाबाद, बिहार
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया की घटक इकाई
ईमेलः *rahulsociojnu@gmail.com*

सारांश

यह अध्ययन जनजातीय समाज में पारंपरिक खेलों से डिजिटल माध्यमों की ओर हो रहे संक्रमण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। झारखंड की जनजातीय परंपराओं में निहित खेल केवल मनोरंजन के साधन नहीं रहे हैं, बल्कि वे समाजीकरण, सामुदायिक एकता, सांस्कृतिक निरंतरता तथा पहचान–निर्माण के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में कार्य करते रहे हैं। पिट्ठू, गिल्ली–डंडा, कबड्डी, काटी, कोकलिया (मुर्गा–लड़ाई), अखाड़ा कुश्ती, छुर तथा पश्नी जैसे पारंपरिक खेलों के माध्यम से सहयोग, साहस, अनुशासन, सहनशीलता तथा सामुदायिक एकजुटता जैसे मूल्यों का संचार होता रहा है।

हालांकि, समकालीन समय में तीव्र आधुनिकीकरण, शहरीकरण, तकनीकी विकास तथा डिजिटल माध्यमों के विस्तार ने जनजातीय युवाओं के मनोरंजन के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया है। मोबाइल फोन, इंटरनेट तथा ऑनलाइन खेलों की बढ़ती उपलब्धता ने पारंपरिक खेलों के स्थान को क्रमशः सीमित कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक सहभागिता आधारित गतिविधियों में कमी तथा व्यक्तिगत, आभासी मनोरंजन की प्रवृत्ति में वृद्धि देखी जा रही है।

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों, शोध प्रतिवेदनों एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर इस परिवर्तन की प्रकृति और इसके सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि जहाँ एक ओर पारंपरिक खेलों का क्षरण सामुदायिक संबंधों, सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामूहिक पहचान को प्रभावित कर रहा है, वहीं दूसरी ओर ये खेल अभी भी पर्व–त्योहारों एवं स्थानीय आयोजनों में प्रतीकात्मक रूप से विद्यमान हैं, जो सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामुदायिक गौरव की भावना को बनाए रखने में सहायक हैं।

अतः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पारंपरिक खेलों और आधुनिक डिजिटल मनोरंजन के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है, ताकि जनजातीय युवाओं की

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.035

सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक समरसता तथा परंपरागत ज्ञान प्रणालियों का संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द

जनजातीय खेल, झारखंड, सामाजिक पहचान, स्वदेशी संस्कृति, आधुनिकीकरण

प्रस्तावना

झारखंड के जनजातीय युवाओं में बदलते मनोरंजन के प्रतिरूप के संदर्भ में झारखंड की जनजातीय समाज–संरचना और उनकी पारंपरिक खेल संस्कृति का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। झारखंड में तीस से अधिक जनजातीय समूह निवास करते हैं, जिनमें संथाल, मुंडा, उरांव और हो प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त बिरहोर, असुर, कोरवा, बिरजिया, सवर तथा पहाड़िया समूहों सहित आइ जनजातियों को आदिम जनजातीय समूह के रूप में वर्गीकृत किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार, झारखंड में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 86,45,042 है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 26.21 प्रतिशत है। इन जनजातीय समुदायों की विशिष्ट परंपराएँ, भाषाएँ, धार्मिक आस्थाएँ, कला–रूप, खान–पान, खेल और पर्व–त्योहार राज्य की समृद्ध सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना को आकार देते हैं।

जनजातीय समुदायों में पिट्ठू, गिल्ली–डंडा, कबड्डी, काटी, कोकलिया (मुर्गा–लड़ाई), अखाड़ा कुश्ती, छुर तथा पश्नी जैसे पारंपरिक खेलों की समृद्ध परंपरा रही है। ये खेल केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि समाजीकरण, सामाजिक कौशलों के विकास, सहयोग की भावना तथा सांस्कृतिक समझ को सुदृढ़ करने के प्रभावी माध्यम हैं। ये खेल शारीरिक गतिविधियों से आगे बढ़कर अनुष्ठानों, परंपराओं और पीढ़ियों के सामूहिक ज्ञान को समाहित करते हैं तथा बच्चों और युवाओं में सामुदायिकता, सहभागिता और सामाजिक–भावनात्मक दक्षताओं का विकास करते हैं।

हालांकि, समकालीन परिदृश्य में आधुनिकीकरण, शहरीकरण और डिजिटल तकनीकों के तीव्र विस्तार के कारण जनजातीय युवाओं के मनोरंजन के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। पारंपरिक खेल, जो कभी सामूहिक सहभागिता और सामाजिक जुड़ाव के केंद्र थे, अब धीरे–धीरे मोबाइल फोन, इंटरनेट और स्क्रीन–आधारित गतिविधियों द्वारा प्रतिस्थापित हो रहे हैं। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामुदायिक सहभागिता में कमी और व्यक्तिगत, आभासी मनोरंजन की प्रवृत्ति में वृद्धि देखी जा रही है।

समाजशास्त्रीय विमर्श में पारंपरिक खेलों की सामाजिक पहचान एवं सामुदायिक भावनाओं के निर्माण में भूमिका अपेक्षाकृत कम अध्ययनित रही है। प्रस्तुत शोध इसी अंतर को पाटने का प्रयास करता है तथा झारखंड में जनजातीय खेलों और सामाजिक पहचान–निर्माण के बीच अंतःसंबंध का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतोंकृसाहित्य समीक्षा, शोध लेखों, पुस्तकों और पत्रिकाओंकृपर आधारित है, जिनमें झारखंड एवं भारत के जनजातीय खेलों का दस्तावेजीकरण किया गया है। इस शोध का उद्देश्य झारखंड की जनजातियों द्वारा खेले जाने वाले पारंपरिक खेलों का दस्तावेजीकरण करना तथा बदलते सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य में इनके समाजशास्त्रीय महत्व और सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करना है।

जनजातीय समाजों में पारंपरिक खेल सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण भंडार के रूप में कार्य करते हैं। ये खेल स्थानीय रीति–रिवाजों, मिथकों और अनुष्ठानों से गहराई से जुड़े होते हैं। दासगुप्ता (2017) के अनुसार, जनजातीय समुदायों के पारंपरिक खेल सामाजिक संरचना, लैंगिक भूमिकाओं और मूल्य–प्रणालियों को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम प्रदान करते हैं। मिश्रा (2019) ने यह स्पष्ट किया है कि ये खेल मौखिक परंपराओं, लोककथाओं और पूर्वजों के ज्ञान के संरक्षण का सशक्त माध्यम हैं। भारत में पारंपरिक जनजातीय खेल क्षेत्र विशेष के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में पाए जाते हैं, जो विविध सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संदर्भों को प्रतिबिंबित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, पूर्वोत्तर भारत में बाँस–आधारित खेल प्रचलित हैं, जबकि मध्य भारत में कुश्ती और पत्थर उठाने जैसे शक्ति–आधारित खेल अधिक लोकप्रिय हैं।

झारखंड, अपनी समृद्ध जनजातीय आबादी के कारण, पारंपरिक खेलों का एक महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है, जहाँ ये खेल सांस्कृतिक, सौंदर्यात्मक और श्रम–आधारित परंपराओं से जुड़े होते हैं। कर्नाडी (धनुष–बाण से संबंधित खेल), पिट्ठू तथा संताली स्टापू जैसे खेलों का उल्लेख कुमार (2020) और वर्मा (2021) के अध्ययनों में मिलता है। ये खेल प्रायः कृषि–आधारित जीवन शैली और मौसमी चक्रों से जुड़े होते हैं तथा सरहुल और करमा जैसे प्रमुख जनजातीय पर्वों के साथ गहराई से संबद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त, ये खेल सामुदायिक सहभागिता और सामूहिक निर्णय–निर्माण को भी प्रोत्साहित करते हैं। उदाहरण के लिए, मुंडा और उरांव जनजातियों में अखाड़ा केवल खेल का स्थल नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद और सामुदायिक निर्णयों का भी केंद्र होता है, जहाँ मनोरंजन और सामुदायिक शासन का समन्वय देखा जाता है। साथ ही, ये खेल निष्पक्षता, सम्मान और सहनशीलता जैसे नैतिक मूल्यों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि झारखंड के जनजातीय समाज में पारंपरिक खेल केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान में भी सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक निरंतरता और सामुदायिक जीवन के महत्वपूर्ण आधार हैं, जिन्हें डिजिटल युग में संरक्षित और पुर्नस्थापित करने की आवश्यकता है।

झारखंड की जनजातियों में स्वदेशी खेल परंपराएँ

झारखंड की जनजातीय समुदायों में पारंपरिक खेल केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, सामाजिक एकता और सामुदायिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग हैं। बदलते समय में "खेल के मैदानों से स्क्रीन तक" के संक्रमण के बावजूद, ये खेल आज भी अपनी सांस्कृतिक प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। प्रमुख स्वदेशी खेल परंपराएँ निम्नलिखित हैं–

1. कर्नाडी (धनुष–बाण प्रतियोगिता): यह जनजातीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है, जो शिकार परंपरा और लक्ष्य–साधन कौशल को दर्शाता है। ये प्रतियोगिताएँ प्रायः त्योहारों के अवसर पर आयोजित होती हैं और सामुदायिक एकजुटता को सुदृढ़ करती हैं।
2. पिट्ठू (लगोरी): पत्थरों को जमाने और गिराने पर आधारित यह खेल टीमवर्क और रणनीतिक सोच को विकसित करता है। शहरीकरण और खेल स्थलों की कमी के कारण इसका प्रचलन घटता जा रहा है।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.035

3. कबड्डीः फसल कटाई के पर्वों में खेले जाने वाला यह खेल शारीरिक सहनशक्ति, रणनीति और सामूहिक प्रयास को बढ़ावा देता है। आधुनिक व्यावसायीकरण के कारण इसके पारंपरिक स्वरूप में परिवर्तन आया है।
4. संताली स्टापू (हॉपस्कॉच): यह लोकप्रिय खेल का एक स्थानीय रूप है, जिसमें जनजातीय परंपराओं के अनुरूप विशेष नियम पाए जाते हैं।
5. चोर–सिपाहीः यह खेल सामाजिक भूमिकाओं का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है तथा नैतिक मूल्यों और त्वरित निर्णय क्षमता के विकास में सहायक होता है।
6. अखाड़ा कुश्तीः सामुदायिक स्थलों पर आयोजित पारंपरिक कुश्ती, जो शारीरिक शक्ति और फुर्ती का प्रदर्शन करते हुए सामाजिक संबंधों को मजबूत बनाती है।
7. डोंगा (नौका दौड़): नदी के किनारे रहने वाले समुदायों में प्रचलित यह जल–आधारित खेल सामूहिक सहभागिता और कौशल को प्रदर्शित करता है।
8. खो–खो और गिल्ली–डंडाः ये पारंपरिक खेल अब विशेषकर शहरी क्षेत्रों में कम होते जा रहे हैं। आधुनिक सुविधाओं और संस्थागत समर्थन के अभाव के कारण इनका महत्व घट रहा है।
9. फरसा खेलः पारंपरिक औजारों के साथ प्रतीकात्मक युद्धाभ्यास पर आधारित गतिविधियाँ, जो साहस और योद्धा परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं।
10. बीज खेलः इमली या अन्य बीजों से खेले जाने वाले ये खेल रणनीति और मनोरंजन का संयोजन हैं तथा सभी आयु वर्ग में लोकप्रिय हैं।
11. कोकलिया (मुर्गा–लड़ाई): इसमें प्रतिभागी मुर्गों की तरह प्रतिस्पर्धा करते हैं, जो फुर्ती और जीवटता का प्रतीक है।
12. काटी (पतंग उड़ाना): यह खेल सटीकता, प्रतिस्पर्धा और उत्साह को दर्शाता है, जिसमें अक्सर लोकगीतों का समावेश होता है।
13. भौरा (लट्टू घुमाना): हस्तनिर्मित लट्टुओं से खेला जाने वाला यह खेल कौशल और कारीगरी को प्रदर्शित करता है।
14. पंचयत्न (पाँच पत्थर): हाथ–आँख समन्वय और धैर्य पर आधारित यह खेल बच्चों और युवाओं में लोकप्रिय है।
15. रस्सी–तान (रस्साकशी): सामूहिक प्रयास और टीम भावना को दर्शाने वाला एक समूह खेल।
16. गेंद खेल (प्राकृतिक सामग्री से): पत्तों या कपड़ों से बनी गेंदों का उपयोग कर खेले जाने वाले ये खेल रचनात्मकता और संसाधनशीलता को प्रोत्साहित करते हैं।

इन सभी खेलों से स्पष्ट होता है कि झारखंड की जनजातीय परंपराओं में खेल केवल शारीरिक गतिविधि नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के संवाहक हैं। हालांकि, डिजिटल युग के प्रभाव के कारण इनका प्रचलन धीरे–धीरे कम हो रहा है, फिर भी ये खेल जनजातीय पहचान और सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण आधार बने हुए हैं।

बदलती जीवनशैली और पारंपरिक खेलों का लोप

आधुनिकीकरण तथा तीव्र तकनीकी प्रगति से उत्पन्न बदलती जीवनशैली ने पारंपरिक खेलों पर गहरा प्रभाव डाला है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी लोकप्रियता और सहभागिता में निरंतर गिरावट देखी जा रही है। "खेल के मैदानों से स्क्रीन तक" के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह परिवर्तन विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ जनजातीय युवाओं सहित व्यापक समाज के बच्चे पारंपरिक खेलों से दूर होते जा रहे हैं।

हाल के अध्ययनों ने यह भी दर्शाया है कि बाहरी प्रभावों ने पारंपरिक खेलों के अस्तित्व को चुनौती दी है। रॉय (2022) के मानवशास्त्रीय अध्ययन के अनुसार, वैश्वीकरण और आधुनिक खेलों का बढ़ता प्रभाव स्वदेशी खेल परंपराओं को पीछे धकेल रहा है, जिससे उनका क्रमिक क्षरण हो रहा है। स्मार्ट टीवी, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स का विस्तार, खेल के मैदानों का सिकुड़ना तथा बढ़ता व्यक्तिवाद ये सभी कारक पारंपरिक खेलों के पतन के लिए उत्तरदायी हैं।

आज के बच्चे डिजिटल माध्यमों की ओर अधिक आकर्षित हैं, जो एक क्लिक पर उपलब्ध हैं, और परिणामस्वरूप उनकी रुचि पारंपरिक खेलों में कम होती जा रही है। पिपर जैफ्रे (2012) के एक सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट हुआ है कि नई पीढ़ी पारंपरिक वीडियो गेम्स से भी दूरी बना रही है और ऑनलाइन गेम्स की ओर अधिक आकर्षित हो रही है, जो इस समस्या की गंभीरता को दर्शाता है।

पारंपरिक खेलों से दूर रहने का बच्चों के शारीरिक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जहाँ पारंपरिक खेल शारीरिक सक्रियता, रणनीतिक सोच, टीमवर्क, सामाजिक अंतःक्रिया, सहयोग और आपसी संबंधों के निर्माण के अवसर प्रदान करते हैं, वहीं अधिकांश डिजिटल खेल इन गुणों से वंचित होते हैं। ऑनलाइन खेलों पर अधिक निर्भर बच्चे शारीरिक फिटनेस, सामाजिक संपर्क तथा संबंध निर्माण में कठिनाइयों का सामना कर सकते हैं (अलशेहरी एवं मोहम्मद, 2019)।

इसके अतिरिक्त, अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि जो बच्चे अत्यधिक समय स्क्रीन पर व्यतीत करते हैं, वे तनाव और चिंता जैसी समस्याओं से अधिक प्रभावित होते हैं (सॉन्डर्स एवं अन्य, 2019)।

पारंपरिक खेल केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनके अभ्यास में कमी आने से न केवल इन खेलों का अस्तित्व संकट में पड़ता है, बल्कि उनसे जुड़े ज्ञान, परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में भी गिरावट आती है। अतः आवश्यक है कि आधुनिकता और डिजिटल प्रभावों के बीच संतुलन स्थापित कर पारंपरिक खेलों को पुनर्जीवित करने के प्रयास किए जाएँ, ताकि सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक विकास दोनों सुनिश्चित हो सकें।

झारखंड की जनजातियों में स्वदेशी खेल परंपराएँ और सांस्कृतिक पहचान

"खेल के मैदानों से स्क्रीन तक" के बदलते परिदृश्य में यह समझना आवश्यक है कि पारंपरिक खेल केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये खेल सांस्कृतिक मूल्यों, मान्यताओं और परंपराओं को प्रतिबिंबित एवं सुदृढ़ करते हैं। सामाजिक पहचान सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति अपनी पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उन सामाजिक समूहों से प्राप्त करता है, जिनसे वह जुड़ा होता है (Tajfel एवं Turner,

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.035

1986)। इस संदर्भ में जनजातीय खेल सामूहिक पहचान को मजबूत करने और समूह एकजुटता को बढ़ावा देने का कार्य करते हैं।

पारंपरिक खेल सांस्कृतिक हस्तांतरण के सशक्त माध्यम हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी ज्ञान, परंपराओं और जीवन–मूल्यों को आगे बढ़ाते हैं। ये खेल अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु का कार्य करते हैं, जिसके माध्यम से किसी समुदाय के इतिहास, रीति–रिवाजों और सामूहिक पहचान की समझ विकसित होती है। झारखंड की विभिन्न जनजातीय समुदायों के अपने विशिष्ट पारंपरिक खेल हैं, जो उनके सांस्कृतिक परिवेश और जीवन शैली के अनुरूप विकसित हुए हैं। ये खेल प्रायः कृषि चक्र, त्योहारों और अनुष्ठानों से जुड़े होते हैं, जो उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रासंगिकता को और अधिक सुदृढ़ करते हैं।

पारंपरिक खेलों के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान, सामाजिक मानदंडों और मूल्यों का संचार नई पीढ़ी तक होता है, जिससे उनकी सामाजिक पहचान का निर्माण होता है। इन खेलों में सहभागिता से व्यक्ति में आत्मबोध, आत्मविश्वास और अपने समुदाय के प्रति जुड़ाव की भावना विकसित होती है। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च (IJAR, 2025) के अनुसार, मणिपुर में स्वदेशी खेल सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण और सामुदायिक एकजुटता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं यह तथ्य झारखंड की जनजातीय परिस्थितियों में भी समान रूप से लागू होता है।

हालांकि, आधुनिकीकरण और डिजिटल प्रभावों के कारण पारंपरिक खेलों का धीरे–धीरे क्षरण हो रहा है, जिसके साथ ही जनजातीय समाज में सामाजिक पहचान में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। इन खेलों में सहभागिता के अवसरों में कमी आने से नई पीढ़ी के सामने अपनी पारंपरिक विरासत और आधुनिक जीवनशैली के बीच संतुलन स्थापित करने की चुनौती उत्पन्न हो रही है। यह स्थिति सामुदायिक मूल्यों के क्षरण और पहचान के विखंडन का कारण बन सकती है।

झारखंड के जनजातीय समाज में खेलों के माध्यम से पहचान निर्माण में खेल नायकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जयपाल सिंह मुंडा, जिन्होंने 1928 में भारत को हॉकी में पहला ओलंपिक स्वर्ण दिलाया, से लेकर माइकल किंडो, सिल्वेनस डुंगडुंग, निक्की प्रधान और आशा किरण बारला जैसे खिलाड़ियों ने जनजातीय पहचान को सुदृढ़ किया है और युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बने हैं। इसी प्रकार, तीरंदाज दीपिका कुमारी की राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सफलताओं ने न केवल व्यक्तिगत उपलब्धि का उदाहरण प्रस्तुत किया है, बल्कि पूरे समुदाय के सामूहिक गौरव और आत्मसम्मान को भी बढ़ाया है।

जब बच्चे अपने समुदाय के पारंपरिक खेलों में भाग लेते हैं, तो वे केवल खेल की तकनीक ही नहीं सीखते, बल्कि अपने समुदाय की भाषा, संस्कृति और जीवन–मूल्यों को भी आत्मसात करते हैं। इस प्रकार, ये खेल केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निरंतरता, सामाजिक एकता और सामूहिक गौरव की सशक्त अभिव्यक्ति हैं।

निष्कर्ष

जनजातीय समुदायों के लिए पारंपरिक खेल केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक विरासत के आधारस्तंभ हैं। ये खेल सामूहिक चेतना, साझा

इतिहास और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए सामाजिक एकता को सुदृढ़ करते हैं। पारंपरिक खेलों में सहभागिता जनजातीय व्यक्तियों को अपने समुदाय के भीतर और बाह्य समाज में अपनी पहचान स्थापित करने में सहायता करती है, जो सामाजिक हाशियाकरण की परिस्थितियों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

टाटा स्टील की ट्राइबल कल्चरल सोसाइटी (TCS) जैसी संस्थाएँ संरचित प्रतियोगिताओं और सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से पारंपरिक खेलों के पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इसके बावजूद, गरीबी, विस्थापन एवं पलायन, भूमि का क्षरण, सांस्कृतिक अवमूल्यन तथा संस्थागत समर्थन की कमी जैसे अनेक कारकों के कारण पारंपरिक खेलों का महत्व निरंतर घटता जा रहा है।

इन खेलों के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि उन्हें आधुनिक जीवन से जोड़ा जाए, जैसे कि विद्यालयी पाठ्यक्रमों तथा स्थानीय खेल उत्सवों में इनका समावेश किया जाए। साथ ही, जनजातीय समुदायों को अपने पारंपरिक खेलों का दस्तावेजीकरण करने तथा उन्हें नई पीढ़ी को सिखाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जनजातीय खेलों के व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों को समझने हेतु और अधिक शोध एवं प्रलेखन की आवश्यकता है।

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पारंपरिक जनजातीय खेल केवल मनोरंजन की गतिविधियाँ नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे समाजशास्त्रीय तंत्र हैं जिनके माध्यम से पहचान, स्मृति और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं पुनर्निर्माण होता है। इन परंपराओं के संरक्षण के प्रयास केवल सांस्कृतिक धरोहर को बचाने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे व्यापक सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में जनजातीय पहचान की स्वीकृति और समावेशिता को भी प्रोत्साहित करते हैं।

अतः नीति–निर्माताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे पारंपरिक खेलों को प्राथमिकता दें, जिससे लुप्त होती खेल परंपराओं और सांस्कृतिक हाशियाकरण की समस्या का समाधान किया जा सके तथा जनजातीय विकास के लिए एक समग्र एवं समावेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया जा सके।

संदर्भ

1. अलशेहरी, अब्दुल्ला घुर्म एवं अहमद मोहम्मद अब्देल सलाम मोहम्मद (2019). "इलेक्ट्रॉनिक गेमिंग, स्वास्थ्य, सामाजिक संबंध एवं शारीरिक गतिविधि के मध्य संबंध." अमेरिकन जर्नल ऑफ मेन्स हेल्थ, खंड 13, अंक 4.
2. बार्टलेट, आर., ग्रैटन, सी., एवं रोल्फ, सी. जी. (2006). एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंटरनेशनल स्पोर्ट्स स्टडीज (खंड 1–3). लंदन एवं न्यूयॉर्कः रूटलेज।
3. भारत की जनगणना (2011). अनुसूचित जनजातियों के जनसांख्यिकीय आँकड़े।
4. दासगुप्ता, एस. (2017). आदिवासी जीवनः पहचान, संस्कृति और राजनीति. प्राइमस बुक्स।
5. दासगुप्ता, एस. (2017). खेल एक सांस्कृतिक आख्यान के रूप मेंः भारत में जनजातीय प्रथाएँ. कोलकाताः हेरिटेज पब्लिशर्स।
6. घुर्ये, जी. एस. (1963). अनुसूचित जनजातियाँ (तृतीय संस्करण). पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.035

7. झा, ए. के. (2015). "पारंपरिक खेल और सांस्कृतिक पहचानः झारखंड के मुंडा जनजाति का अध्ययन." जर्नल ऑफ फोकलोर रिसर्च, 52(2), पृ0सं0–**123–145**।
8. कुजूर, जोसेफ मरियनुस (2020). धर्म, परिवर्तन और पहचानः छोटानागपुर के उरांवों का समाजशास्त्रीय अध्ययन. प्राइमस बुक्स।
9. जर्नल ऑफ फैमिली मेडिसिन एंड प्राइमरी केयर (2024). "भारत में ग्रामीण खेल संस्कृति में गिरावट." खंड 13, अंक 8।
10. सहाय, केशरी एन. (1976). अंडर द शैडो ऑफ क्रॉस. कोलकाताः इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च एंड एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी।
11. कुमार, आर. (2020). झारखंड के स्वदेशी खेलः एक नृवंशविज्ञानात्मक अध्ययन. रांचीः ट्राइबल स्टडीज प्रेस।
12. मजुमदार, आर. (2018). सांस्कृतिक विरासत और जनजातीय खेलः स्वदेशी प्रथाओं का अध्ययन. नई दिल्लीः एकेडमिक प्रेस।
13. मैककॉर्मिक, आर. (2017). "हरित क्षेत्र तक पहुँच और बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव. "जर्नल ऑफ पीडियाट्रिक नर्सिंग, 37, पृ0सं0–**3–7**।
14. मेंचर, जे. पी. (1974). "भारत में जनजातीय स्थिति." अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, 79(6), पृ0सं0–**1321–1342**।
15. मिश्रा (2019). भारतीय पारंपरिक खेलः महत्व और विकास का अध्ययन. नोटियन प्रेस।
16. मिश्रा, ए. (2019). "मौखिक परंपराएँ और खेलः जनजातीय संस्कृतियों में अंतर्संबंध." जर्नल ऑफ एथ्नोग्राफी एंड फोकलोर, 12(2), पृ0सं0–**34–50**।
17. वर्मा, आर. सी. (1990). भारतीय जनजातियाँः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य. नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग।
18. रॉय, एस. (2022). "आधुनिकीकरण और पूर्वी भारत में स्वदेशी खेलों पर प्रभाव." एंथ्रोपोलॉजी टुडे, 18(1), पृ0सं0–**45–60**।
19. सॉन्डर्स, ट्रैविस जे., चापुट, जीन–फिलिप एवं ट्रेम्ब्ले, मार्क एस. (2019). "बैठे रहने की प्रवृत्ति और बच्चों में स्वास्थ्य जोखिम." कनाडियन जर्नल ऑफ डायबिटीज, 43(2), पृ0सं0–**111–117**।
20. शुक्ला, ए. (2024). "खनन संघर्ष में भारतीय वन कार्यकर्ता." द इकोनॉमिक टाइम्स.
21. सिंह, पी. (2020). "जनजातीय समुदायों में पारंपरिक खेल और पहचान निर्माण." सोशियोलॉजिकल जर्नल ऑफ इंडिया, 45(3), पृ0सं0–**56–78**।
22. सिंह, आर. के. (2012). "झारखंड में जनजातीय बच्चों के समाजीकरण में पारंपरिक खेलों की भूमिका." एशियन फोकलोर स्टडीज, 71(1), पृ0सं0–**55–78**।
23. सरकार, सुमित (1999). "हिंदुत्व और धर्मांतरण का प्रश्न." द कंसर्न्ड इंडिया गाइड टू कम्युनलिज्म।

24. ताजफेल, एच., एवं टर्नर, जे. सी. (1986). "अंतर–समूह व्यवहार का सामाजिक पहचान सिद्धांत."
25. वरुघीस, रोशन एवं मुखर्जी, सुमेन (2024). "विकासजनित विस्थापन और आदिवासी अस्तित्व." ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज कम्युनिकेशंस, 11(1)।
26. वर्मा, टी. (2021). "त्योहार, खेल और पहचानरू झारखंड की जनजातीय समुदायों से अंतर्दृष्टि." कल्चरल स्टडीज क्वार्टरली, 29(4), पृ0सं0–**22–37**।
27. विद्यार्थी, एल. पी. (1955). "जनजातीय समाज में पवित्र जटिलता." जर्नल ऑफ एंथ्रोपोलॉजिकल रिसर्च, 11(3), पृ0सं0–**290–303**।
28. विद्यार्थी, एल. पी. (1961). भारत की जनजातीय संस्कृति. नई दिल्लीः कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग।
29. क्साक्सा, वर्जिनियस (1991). "भारत में जनजातियों का रूपांतरण" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 34(24)।
30. व्हाइट, जे. सैमुअल एवं विल्सन, बी. फिलिप (2024). "मिट्टी में खेलना बच्चों की प्रतिरक्षा प्रणाली को कैसे मजबूत करता है." चौनल न्यूज एशिया।